P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-3* (Part-1) November- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हथकरघा उद्योग का ऐतिहासिक महत्व

सारांश

प्राचीन समय से ही हथकरघा उद्योग उत्तर प्रदेश की अर्थ व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह प्रदेश अपने औद्योगिक मूल्यों और खासकर कुटीर उद्योग के लिए विख्यात रहा है। उत्तर प्रदेश में इस उद्योग का प्रारम्भ मुगल तथा बादशाहों के कार्यकाल से ही माना जाता है। मुगल बादशाहों ने इस उद्योगों का बहुत ही उदार और दयालुतापूर्ण संरक्षण दिया था। 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह क्षेत्र विभिन्न प्रकार के खूबसूरत डिजायनों एवं उच्चकोटि के हाथ से निर्मित वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। साथ ही साथ खास प्रकार के वस्त्रों पर डिजाइन निर्माण के लिए भी यह क्षेत्र प्रसिद्ध था। व्यवहार में यह देखा गया है कि इन क्षेत्रों में विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का मुख्य साधन सूती वस्त्र उद्योग रहा है। कपड़ा सार्वजनिक आय का मुख्य स्रोत रहा है इसीलिए रेशमी और ऊनी उद्योग की तुलना में सूती वस्त्र उद्योग को अलग से महत्व दिया गया।

नीतू श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक,
समाजशास्त्र विभाग
सेण्ट एण्ड्रयूज कालेज,
गोरखपुर

मुख्य शब्द : Add some keywords here.

प्रस्तावना

मशीनी युग के आगमन और उसके परिणाम स्वरूप मशीनीकरण के पूर्व बहुत से कुटीर उद्योग चलते थे और घरेलू मांग की पूर्ति करते थे। एसे ही कुटीर उद्योग में हथकरघा उद्योग भी था। इस उद्योग का महत्व धीरे–धीरे बढ़ता गया और इसके बाजार की सीमाएं भी एक राज्य से दूसरे राज्य और एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र तक बढ़ती गयी। भारतीय बुनकर एवं कारीगरों ने हाथ से कपड़ा बुनने, छपाई करने एवं रंगाई करने में प्रसिद्धि प्राप्त की एवं विश्वविख्यात भी रहे। हर सभ्य देश में प्राचीन काल से ही बुना हुआ वस्त्र मानव के लिये आवरण के रूप में प्रयोग होता था। भारत सम्भवतः विश्व का पहला देश है जिसने बुनाई की समस्त कला में उच्च कोटि की दक्षता एवं पूर्णता प्राप्त कर ली थी। इस क्षेत्र के कारीगर एवं बुनकर अपना व्यवसाय या उद्योग बिना किसी विशेष प्रकार की तकनीकी शिक्षण एवं प्रशिक्षण के ही करते रहे हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त पीढ़ीगत व्यवसाय में कारीगर एवं बुनकर वस्त्र बुनाई की कला में पारंगत है। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भारत में हाथ से कपड़ों या वस्त्रों को बुनने की परम्परा एवं कला का अस्तित्व आज से 5800 वर्षो से पूर्व भी था।[1] पश्चिमोत्तर भारत में स्थित सिन्धु घाटी में मोहनजोदड़ो की खुदाई में कुछ सूती वस्त्रों के टुकड़े प्राप्त हुए है और उन पर बने छाप(डिजाइन) भी प्राप्त हुए हैं।[2]

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों उद्देश्यों को भी ध्यान में रखा गया है। सैद्धान्तिक उद्देश्य विभिन्न सामाजिक घटनाओं और तथ्यों के बीच पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सम्बन्धों को ज्ञात करता है। इसके विपरीत व्यवहारिक उद्देश्य सामाजिक जीवन के विभिन्न घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करता है। इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य हथकरघा उद्योग के इतिहास के संदर्भ मे जानकारी प्राप्त करना है तथा यह भी ज्ञात करना है कि हथकरघा उद्योग किस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था मे प्रमुख योगदान करता है।

शोध अभिकल्प

प्रस्तुत अध्ययन में अपने उद्देश्य के अनुरूप वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का चुनाव किया है तथा वास्तविक तथ्यों का ही अध्ययन किया गया है।

शोध पद्वति

प्रस्तुत अध्ययन में भी वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करते हुए शोध कार्य किया गया है, इस पद्धति में निम्नलिखित चरणों का प्रयोग किया गया है।

1. कार्यकारी प्राक्कल्पना का निर्माण
2. तथ्यों का अवलोकन, एकत्रीकरण एवं लेखन
3. लिखित तथ्यों का श्रेणियों अथवा अनुक्रमों में वर्गीकरण

4. वैज्ञानिक सामान्यीकरण एवं नियमों का प्रतिपादन।

हथकरघा उद्योग से सम्बन्धित साहित्य में सूत का सबसे पहला सन्दर्भ एवं प्रमाण ऋगवेद से मिलता है। इसकी रचना 1500 ई0पू0 में हुई थी जिसमें लिखा गया था कि करघे में धागे (सूत) का उपयोग बुनकरों द्वारा किया गया। और यह भी कहा गया कि सूई का प्रयोग बुनाई के लिये किया जाता है।[3] अथर्ववेद में लिखा गया है कि दिन और रात पृथ्वी पर उसी तरह प्रकाश और अंधकार फैलाते हैं जैसे बुनकर करघे में ढेरी (शटल) फेंकता है।[4] महाभारत में इसका वर्णन 'मोनिक्रा' के रूप में वर्णित है जो एक प्रकार का वस्त्र था जिसमें मोतियों की झालर (लड़ी) लगी हुई थी। पाली के रचनाओं में कौशेयक का जिक्र है जिसका मूल्य लाखों रूपये था।

युगों से सिल्क न केवल अपनी कलात्मक महत्व के लिये जाना जाता था बल्कि राजकीय संस्था के लिये भी जाना जाता था। भारतीय सिल्क की विरासत का मूल्यांकन करते हुए "श्री डी० एन० कपूर" ने कहा है कि 5000 वर्ष पहले भारत में विशेष उत्सव के लिये सिल्क, वस्त्रों के रूप में बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता था, चाहे साधारण विवाह का अवसर रहा हो या नियमित दरबार का। ऋगवेद जो 5000 वर्ष से भी ज्यादा पुराना है, उर्णत का जिक्र करता है जिसे सामान्यतः सिल्क का एक किस्म माना जाता है। रामायण भी विभिन्न रंगों के अच्छे सिल्क के वस्त्रों का हवाला देता है जो सीता को वैवाहिक उपहार के रूप में दिये गये थे। महाभारत में भी इस बात का जिक्र है कि युधिष्ठिर ने रेशम के बने धागो से बुने हुए वस्त्र उपहार के रूप में प्राप्त किया था।[5]

पांचवी शताब्दी ई0वी0 पूर्व के मध्य में (484 से 425 वी० सी०) हेरोडोट्स ने भारतीय सूती वस्त्रों को उच्चकोटि का माना है। भारतीय सूती वस्त्रों के सम्बन्ध में बहुत ही ऊँचे विचार व्यक्त करता है। "भारतीयों के पास एक प्रकार का पौधा है जो फल के स्थान पर बारीक और अच्छा किस्म का ऊन पैदा करता है जो भेड़ से भी नहीं प्राप्त हो सकती है इसी से भारतीय लोग अपने वस्त्र बनाते हैं।'[6]

हमारे देश में आठवीं शताब्दी तक हथकरघा उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि उस समय अधिक मात्रा में सूती वस्त्रों को विदेश में निर्यात किया जाता था। इसी प्रकार मेगस्थनीज द्वारा वर्णित है कि भारत द्वारा निर्मित सूती वस्त्रों का प्रयोग स्वयं अपने ही देश में नहीं किया जाता था बल्कि बाहर के देश में (भिन्डा, रोम, युनान और ग्रीक) भी भेजा जाता था।[7] भारतीय हथकरघा उद्योग में विदेशों में निर्यात के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। यह पूर्ण रूप से ज्ञात है कि बहुत प्राचीन काल से लेकर 18वीं शताब्दी तक उच्च किस्म का हथकरघा वस्त्र यूरोपीय देशों को बड़ी मात्रा में निर्यात किये जाते थे। बहुत समय पहले से ही यूरोप भारतीय श्रम से बने वस्त्रों को प्राप्त करता था और उनके बदले में उनकी कीमती वस्तुएं और ऊन से बनी हुई वस्तुएं प्राप्त करता था।[8]

हथकरघा बुनकरों द्वारा जो अग्रणी किस्म प्रदर्शित की जाती थी उससे यूरोपीय देशों में भारत को बड़ी प्रतिष्ठा मिली। भारतवासियों के लिये इन निर्यातों से बड़ी अच्छी आय होती थी। हमारे हथकरघा वस्त्रों की निर्यात क्षमता बहुत पहले से ही अधिक रही है क्योंकि हथकरघा की क्षमता कलात्मक वस्त्रों की माँग को पूरी करता था।

बहुत से प्राचीन महत्वपूर्ण केन्द्र जो उच्च कोटि के वस्त्रों की विभिन्न किस्मों के उत्पादन या निर्माण से सम्बन्धित है जैसे ढ़ाका का मलमल, मछलीपट्टनम का चिंट और कलमकारी, बनारस का जरी और ग्रोमसर रेशम, लखनऊ का चिकन, कालीकट का कैलीको, बड़ौदा का पटोला और काँचीपुरम् का सिल्क ये सभी भारतीय हथकरघा उद्योग की परम्परा और संस्कृति को प्रस्तुत करते हैं, जे भारतीय वस्त्र कला की सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। ढ़ाका की मलमल की उच्च गुणवत्ता जैसे "आब–ए–खाँ (रनिंग वाटर) शरबती बफ–ते–हवा और शब–ए–नम जिनके लिये मुगलकाल में भारत विश्वभर में विख्यात था, हाथ से बने हुए सूत से हथकरघों पर तैयार किये जाते थे"।[9] मलमल के वस्त्रों के सन्दर्भ में कहा गया है "मलमल की बुनाई जो इतना सूक्ष्म व बारीक और अद्भुत मुलायम होता था कि मात्र एक औंस रूई से कुछ मीलों तक लम्बा सूत (धागे) के रूप में काता जाता था। यह ऐसी कला थी जो ढ़ाका के लोगों एवं कारीगरों को अच्छी तरह ज्ञात थी और ये लोग इसका प्रयोग भी अच्छी तरह से करते थे।[10]

इन सब के ऊपर यह सर्वविदित है कि मलमल का कपड़ा/वस्त्र दियासलाई की डिब्बी में पार्शल भेजा जाता था। भारत का मलमल बारीक सूती वस्त्र से भी हल्का और मकड़ी के जाले के तार से भी बारीक माना जाता था।

भारत में हस्त निर्मित वस्त्रों ने अपना स्थान बनाये रखा। इस उद्योग की उत्पत्ति और इसके अतीत के गौरव को बहुत समय से सम्मानित कुटीर उद्योग का नाम दिया जा सकता है। विश्व के किसी भी देश ने इस प्राचीन कला को अपने मूल रूप में सुरक्षित और स्वीकार्य नहीं किया जितना कि भारत ने। इस उद्योग में भारत के सांस्कृतिक विरासत को पोषण प्रदान किया। इस उद्योग की परम्परा और संस्कृति के संरक्षण द्वारा इस उद्योग ने भारतीय लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

कौटिल्य ने भी भारत में हाथ से बने हुऐ कपड़ो की विशेषताओं का वर्णन किया है। उनके अनुसार नियोजक बुनकरों द्वारा कुशल व्यक्तियों से बुनाई का काम लिया जाता था जिससे उस काल में देश में व्याप्त बेकारी की समस्या हल होती थी। लोगों के लिये रोजगार के अवसर सुलभ थे। इन बुनकरों द्वारा अच्छे किस्म के धागे का निर्माण किया जाता था जिससे कोट एवं अच्छी पोशाकों के कपड़े कम्बल, दरी, पर्दे, सिल्क के कपड़े तथा ऊनी कपड़ों का निर्माण भी किया जाता था।[12]

प्राचीन युग में भारतीयों को कताई–बुनाई के बेहतरीन तरकीबों की जानकारी थी। उस समय तकनीकी ज्ञान के विशेषज्ञ अधिक मात्रा में पाये जाते थे तथा इनकी कार्यक्षमता भी उच्चकोटि की थी। ऋगवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में इसका उल्लेख अधिक मिलता है।[13] कताई बुनाई की शिक्षण संस्थाएं भी उस समय विद्यमान थी जो

विभिन्न प्रकार की तकनीकी शिक्षा बुनकरों को देती थी। आजकल की शिक्षण संस्थाओं की तरह उस समय भी कताई बुनाई का प्रशिक्षण लोगों को दिया जाता था।[14]

मनुस्मृति में भी बुनाई एवं रंगाई की कला का वर्णन है। अजंता की गुफा चित्रों से यह आभास मिलता है कि प्राचीन काल में युवतियाँ अच्छी–अच्छी रंगीन साड़ियों का प्रयोग करती थी। अजंता में विभिन्न डिजाइनों की बुनाई की चित्रकारी देखने को मिलती है। ऐसे कपड़ों को बांधनी कहा जाता था। बूटेदार छापे के मलमल के कपड़े के प्रचलन का प्रमाण भी इन चित्रों में मिलता है।

पांचवी शताब्दी के प्रारंभ में सिल्क बुनकरों द्वारा मालवा में एक मन्दिर का निर्माण कराया गया जो सूर्य को समर्पित किया गया है। 473–744 ई० में इसकी मरम्मत करायी गयी थी। उस समय लगाये गये एक शिलालेख पर तत्कालीन बुनकरों की कलाकृतियों का उल्लेख किया गया है। 14वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में कुशल बुनकरों द्वारा दिल्ली में शिल्क के कपड़ो का निर्माण किया जाता था तथा तत्कालीन कपड़ो की प्रतिष्ठा विश्व के विभिन्न देशों में थी। ऐसा कहा जाता है कि मुगल शासन काल में भारत के हस्तनिर्मित कपड़े इतने बारीक एवं सुन्दर होते थे कि बड़े राजघरानों की लड़कियाँ इनका प्रयोग करती थीं। एक बार औरंगजेब की बेटी जेबुन्निशा ऐसे कपड़े पहनकर बाहर निकलीं लगता ही नहीं था कि वह कपड़े पहने हुए हैं, औरंगजेब इस बात पर बहुत क्रोधित हुआ क्योंकि यह शाही दरबार की प्रतिष्ठा गिराने वाली बात थी, बादशाह का गुस्सा देखकर शहजादी ने कहा पिताजी मैने सात परत करके मलमल का कपड़ा पहना है। इससे भारतीय मलमल की सुन्दरता का अनुमान लगाया जा सकता है। ढ़ाका की मलमल ''शबनम'' जब भिगोकर घास के उपर रख दी जाती है तो उसे खुली आंख से नहीं देखा जा सकता इसलिए इसका नाम सायंओस रखा गया। ठीक इसी प्रकार ही एब्रावन कपड़ा होता था। ढ़ाका का मलमल अब केवल अतीत की वस्तु रहगया है। ''डॉ० जेम्स टेलर'' ने इस उद्योग का गहन अध्ययन करके लिखा है कि कपड़ा इतना बारीक होता था कि अधिक लम्बाई का होते हुए भी कम वजन का होता था। ''ट्रेवरनियर'' ले लिखा है कि शाह सफी (1628–1641) के राजदूत ने भारत से लौटने पर उसे एक टरबन, पगड़ी या साफा भेंट किया था जो बहुत ही बारीक किस्म का था।

प्राचीन भारत में 1656 से 1803 ई० तक सूती और रेशमी कपड़ो की बुनाई के प्रमाण मिलते हैं। सूती दरी की बुनाई प्रारम्भ में अकबर और कारखौरा द्वारा आगरा, लाहौर तथा फतेहपुर सीकरी में प्रारम्भ करायी गयी थी। उस समय इन शहरों में कुछ समय के लिए उनकी राजधानियाँ थी। लाहौर में बुनी सूती दरियां सादी एवं फूलवाली थीं। ये शहर इन वस्तुओं के निर्माण केन्द्र के रूप में जाने जाते रहे हैं। आगरा में सबसे अधिक इनका निर्माण होता था परन्तु इनके आकार एवं रंग अंग्रेजों को पसन्द नहीं आये। फलस्वरूप भारतीय बुनकर अंग्रेजों की पसन्द का सामान बनाने लगे। जब कभी दरी के बड़े आकार की मांग होती थी उनके दाम ऊँचे रखे जाते थे।

धीरे–धीरे उत्पादन केन्द्र राजधानियों से हटकर छोटे–छोटे कस्बों में भी फैलने लगे। गांवों में भी बुनाई का कार्य प्रारम्भ हो गया। जौनपुर में कालीन एवं सूती वस्त्रों की बुनाई आगरा और लाहौर की तुलना से ज्यादा होने लगी। जौनपुर में निर्मित हथकरघा वस्त्रों, दरियों एवं कपड़ों का निर्यात पटना एवं बंगाल के माध्यम से होने लगा। फलस्वरूप पटना में भी बुनाई का कार्य प्रारम्भ हुआ। यहां पर शतरंज नाम से दरी की बुनाई प्रारम्भ हुई जो पूर्णतयः सूती होती थी। अन्य स्थानों में निर्मित दरियों में सूत एवं ऊन दोनों का मिला जुला इस्तेमाल होता था। पटना से सम्बद्ध जिलों जैसे दाउदनगर आदि में भी बुनाई का कार्य प्रारम्भ हो गया पटना में निर्मित दरियों का आकार साढ़े चार गज ग ढ़ाई गज का होता था जिसकी कीमत एक रूपया सात आना होती होती थी। इसके साथ ही दिल्ली में भी दरियों की बुनाई के सम्बन्ध में साक्ष्य मिलते हैं।

निष्कर्ष

हमारा शरीर कितना ही कुरूप, दुर्बल क्यों न हो, परन्तु वस्त्र हमारी सारी कुरूपता को छिपा लेता है। यह हमारे व्यक्तित्व में आकर्षण की उत्पत्ति करता है। वस्त्र संस्कृति मूल्यों, भावनाओं तथा चित्तवृत्ति आदि का प्रतीक है। जो कला में जीवन्त होता है सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की शक्तियां वस्त्रों में पिरो उठती है। अतः हथकरघा उद्योग और उसका कृतित्व हमारी संस्कृति का परिणाम है जिसकी महत्ता वेंकटरमन द्वारा अभिव्यक्त है। 1986 को हथकरघा को आधुनिकीकरण के वर्ष के रूप में जाना जाता है।

वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न डिजाइनों को देश के विभिन्न भागों में निर्मित की जाती रही है इनमें ढ़ाका, हैदराबाद, जयपुर, मैसूर कोटा, ग्वालियर, पटना, इन्दौर, मदुरई तथा तन्जौर प्रमुख है। इसके अतिरिक्त विभिन्न रंगों तथा कारखानों में निर्मित वस्त्र भी उपर्युक्त केन्द्रों पर बुने जाते हैं। वाराणसी 'किमखाब' के लिए विशेष प्रसिद्ध रहा है इसके अतिरिक्त अन्य केन्द्र दक्षिण तथा पश्चिम भारत में स्थित थे। सम्राट मुहम्मद बिन तुगलक ने अहमदाबाद तथा वाराणसी से बुनकरों को बुलाकर औरंगाबाद में उन्हें निवास करने को प्रेरित किया था। इस प्रकार वहां हथकरघा पर बुने कपड़ों का निर्माण शुरू हुआ। रेशमी वस्त्रों के विभिन्न प्रकारों में मध्यप्रदेश के चन्देरी तथा महेश्वरी, लखनऊ का मलमल, गुजरात का पटोला तथा वाराणसी की रेशमी साड़ी, मद्रास तथा फर्रूखाबाद के सूती वस्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन वस्त्रों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें विभिन्न अनुपातों में रेशम का प्रयोग किया जाता है।

स्वतन्त्रता के पूर्व हथकरघा उद्योग की स्थिति की समीक्षा– लगभग प्रारम्भ से ही विभिन्न प्रकार के छोटे उद्योग एवं कुटीर उद्योग धन्धे का देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। हथकरघा उद्योग इन उद्योगों में सबसे प्राचीन रहा है। गहरे रंग के सूती कपड़े तथा मोहनजोदड़ो के अवशेषों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि यह उद्योग आर्यो के भारत प्रवेश से 4000 वर्ष पूर्व प्रचलित था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *हैण्डलूम इण्डस्ट्री इन इण्डिया ए स्टडी (नेशनल कोआपरेशन बैंक आफ इण्डिया)राव ए0वी0 1973 बी01*
2. *एनशिएण्ट इण्डिया (एन0सी0ई0आर0टी0) शर्मा, राम 1980 न्यू देलही p.39*
3. *गजेटियर ऑफ इण्डिया, 1973 सोशल एजूकेशन,मिनिस्ट्री,गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया पब्लिकेशन न्यू देलही पी0–260*
4. *अथर्ववेद, सी डेट इन मती चन्द्रा, 1930, प्राचीन भारतीय वेश–भाषा, इन हिन्दी प्रयाग – p.14*
5. *हैरिटेज आफ इण्डिया सिल्क जर्नल ऑफ इण्डस्ट्री एण्ड ट्रेड,वाल्यूम XXIX एन0–3,कपूर,बी० एन०,1979 न्यू देलही*
6. *कॉटन सेकेण्ड एसिसन मैकग्रो हिल बुक कम्पनी आई एन सी लन्दन,ब्रो हैरी वाट्स,1983 p. 15*
7. *रिपोर्ट ऑफ द इण्डस्ट्रियल कमीशन,गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, 1981न्यू देलही– p. 195*
8. *ऑन कोलोनिएलीजम, मार्क्स एण्ड एंजिल्स, 1978 प्रोग्रेस पब्लिशर्स, सेवन्थ एडीसन मास्को यू एस एस आर p. 4*
9. *इण्डियन इण्डस्ट्रीज, शर्मा टी0आर0 एण्ड चौहान, 1982 चाँद पब्लिकेशन न्यू देलही–p. 57*
10. *इण्डिया– ए जनरल सर्वे नेशनल बुक ट्रस्ट न्यू देलही,कुरियन जार्ज, 1970, p.118*
11. *द इण्डस्ट्रीयल इवेल्यूशन ऑफ इण्डिया इन रिसेन्ट टाइम्स,फोर्थ इडीसन, गाडगिल डा0 डी0आर0,आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, p.32*
12. *कौटिल्य – 02/33/23 ।*
13. *अथर्ववेद – 06/12/21 ।*
14. *ऋगवेद – 10/130/1 ।*